श्री अमृतेश्वर-भैरव महिम्नस्तोत्रम्

संपादक
ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजी महाराज

हिन्दी रूपान्तरकार
प्रो० मखनलाल कुकिलू

प्रकाशक
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
प्रधान कार्यालय
गुप्त गंगा, निशात, कश्मीर।

श्री अमृतेश्वर-भैरव महिम्नस्तोत्रम्

संपादक
ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजी महाराज

हिन्दी रूपान्तरकार
प्रो० मखनलाल कुकिलू

प्रकाशक
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
प्रधान कार्यालय
गुप्त गंगा, निशात, कश्मीर।

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज के
मुखारविन्द से प्रस्फुटित
श्री अमृतेश्वर-भैरवनाथ का
महिम्नस्तोत्र

हिन्दी रूपान्तरकार

प्रो० मखनलाल कुकिलू

संपादक
ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजी महाराज रैणा

प्रकाशक

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
प्रधान कार्यालय
गुप्तगंगा, निशात, कश्मीर।

मुद्रक

गोल्डन प्रिन्टर्स,
61, म्युनिसिपल मार्किट,
कॅनाट सर्कस, नयी दिल्ली - 110 001.

प्रथम संस्करण ईस्वी सन् १९९३

(सर्वाधिकार ट्रस्ट के अधीन सुरक्षित)

मूल्य १५/– रुपये

पुस्तक प्राप्ति स्थान
१. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, निशात, कश्मीर।
२. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, जम्मू कार्यालय
२ महेन्द्र नगर
कनाल रोड, जम्मू (तवी)।
३. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, दिल्ली कार्यालय,
वसन्त कुंज, फोन : 6896266

मनुष्यदेहमास्थाय छन्नास्ते परमेश्वराः।
(मनुष्य शरीर को धारण करके परमेश्वर ही गुरु के रूप में गुप्त रूप से ठहरे हुए हैं)



ईश्वर-स्वरूप लक्ष्मण जी महाराज

ईस्वी 9.5.1907
वैशाख कृष्ण पक्ष द्वादशी

ईस्वी 27.9.1991
आश्विन कृष्ण पक्ष चतुर्थी



दो शब्द

ईश्वरस्वरूप सद्गुरु महाराज स्वामी लक्ष्मणजी की दूसरी निर्वाण-जयन्ती के अवसर पर "अमृतेश्वर-भैरव महिम्नस्तोत्र" पुस्तिका का प्रकाशन महान हर्ष का विषय है। इस स्तोत्र का संपादन स्वयं सद्गुरु महाराज ने समय-समय पर अमृत वचनों को जोड़कर किया था। निर्वाण प्राप्ति से कुछ वर्ष पूर्व जब इन्हें रुद्र शक्तिसमावेश के परिणामस्वरूप अद्भुत भैरवी अवस्था का उदय हुआ था तो इस स्तोत्र के संकलन की ओर इनका मोह दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। यहाँ तक कि इन्होंने निरन्तर रूप से सन्ध्याकालीन अभ्यास क्रिया में इस स्तोत्र को जोड़ने का आग्रह किया और अपनी देख-रेख में उपस्थित सज्जनों से इस स्तोत्र का पाठ सन्ध्या समय करवाने लगे। इस स्तोत्र की महिमा का वर्णन करते हुए इन्होंने अपने मुखारविन्द से कहा था कि इस स्तोत्र के सन्ध्याकालीन पूजा में निरन्तर पाठ करने से सारी मानसिक शारीरिक और दैवी विपत्तियों का समूल नाश हो सकता है और यही एकमात्र स्तोत्र वर्तमान कालीन घोर संकट से सारी कश्मीरी जनता को मुक्ति दिला सकता है। इस बात को दृष्टि में रखकर आज के पुण्य-पर्व पर ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट, निशात, कश्मीर ने इस पुस्तिका का प्रकाशन कर कश्मीर भूमि के साथ-साथ सारे भारत का कल्याण किया।

स्वामी जी महाराज सन्ध्या कालीन अभ्यास के महत्त्व से भली-भाँति परिचित थे। वे अपने उपदेशों में समय-समय पर कहा करते थे कि–

न दिवा पूजयेत् देवं रात्रौ नैवच नैवच।
अर्चयेत् देवदेवेशं दिनरात्रि परिक्षये।।

अर्थात् इष्ट देव की पूजा न दिन में करनी चाहिए न रात को। तात्पर्य यह कि न दिन में अभ्यास करना चाहिए न रात को। एकाग्रचित्त से प्राणापान क्रिया में भी नहीं लगना चाहिए। अपितु मध्यधाम में ही अपने अभ्यास को स्थिर करना चाहिये। अपने इष्ट देव अमृतेश्वर को दिन रात्रि परिक्षय पर पूजना चाहिये। अर्थात् जब दिन का अन्त तैयार हो और रात्रि का आरम्भ होनेवाला हो या रात्रि का अन्त तैयार हो और दिन का आरम्भ होनेवाला हो उस सन्धि स्थान पर अभ्यास करना चाहिए और अपने देव को पूजना चाहिए। श्री गुरु महाराज रात और दिन को प्राणापान संचार का प्रतीक मानते थे और प्राणवायु के अस्त और अपानवायु के उदित न होने के अन्तराल में जो कुम्भक अवस्था या जो शून्य अवस्था (Gap) अनुभव की जाती है उसे वे सन्धिस्थान कहा करते थे। कश्मीरी योगीजन इसी सन्धिस्थान को कश्मीरी भाषा में "सुन्ध" नाम से भी पुकारते हैं और इसी पर समाहित चित्त से इष्टदेव को पूजना चाहिए। इस प्रकार के सच्चे अभ्यास को सुदृढ़ बनाने के लिए ही हमारे सद्गुरु महाराज सदा उपदेशामृत से हमें सींचा करते थे। हमारे पारलौकिक और ऐहिक कल्याण के लिए उनके इसी स्तोत्र को हिन्दी रूपान्तरण के साथ आप लोगों के सामने रखना, ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट, निशात, कश्मीर ने अपना प्रथम कर्त्तव्य समझा। ट्रस्ट के ही अनुरोध पर मैंने भी इस स्तोत्र का हिन्दी रूपान्तरण करके अपने प्राणप्रिय सद्गुरु महाराज की चरण-धूलि के परमाणु से

अपने को धूसरित करना चाहा। हिन्दी अनुवाद करते समय बीजमन्त्रों का रहस्य अथवा अन्य श्लोकों का रहस्य जो मैंने खोला, वह मैंने उन्हीं के दिखाये गये मार्ग का अनुसरण किया। इसमें मैंने अपना कुछ नहीं जोड़ा। या यूँ समझिये कि इस स्तोत्र का गम्भीर अर्थ सहित आकार उन्होंने स्वयं बनाके रखा था मैंने केवल उस पर रंग चढ़ाने का प्रयास किया। वास्तव में वह रंग भी उन्हीं का था। उन्होंने अपनी भैरवी अवस्था में अमृतेश्वरमहिम्नस्तोत्र की व्याख्या न जाने किन-किन सोपानों पर चढ़कर की थी, उसे सम्पूर्ण रूप से स्मृतिकोष में रखना असम्भव था, क्योंकि उनके गौरव के आगे सुस्मृति भी विस्मृति में बदलती थी। इस विस्मृति का आवरण भी उन्होंने इस समय अपनी इच्छा से उतना ही उठाया जितनी उनको इच्छा थी। अतः मैं साधकजनों का क्षमा प्रार्थी हूँ।

इस अमृतेश्वर महिम्नस्तोत्र में सर्वप्रसिद्ध 'अघोर मन्त्र' में एक पाद में मात्राविकार देखने को मिलेगा अर्थात् "घोरघोर तरेभ्यश्च" के स्थान पर "घोर घोर तरीभ्यश्च" पाठ मिलेगा। यह मात्रा परिवर्तन सद्गुरु महाराज ने ही अपनी भैरवी अवस्था में किया है। अतः इससे विचलित नहीं होना चाहिए। फिर भी मैं साधकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि जिस दिन उन्होंने यह नया पाठ "घोर घोर तरीभ्यश्च"—लिखवाया, मुझसे रहा न गया। मैंने मूर्ख बुद्धि के कारण दुस्साहस किया और प्रार्थना की कि शैवी साधनाक्रम में परम्परागत "तरेभ्यश्च" पाठ ही प्रचलित है "तरीभ्यश्च" नहीं, तथा बहुरूपगर्भ में भी इसी "तरेभ्यश्च" पाठ की ओर रहस्य प्रक्रिया में संकेत किया गया है। क्या फिर भी इस मूलमन्त्र की हम शुद्धि करके नया पाठ लिखेंगे?

सद्गुरु महाराज दयानिधि थे, वे मेरे इस दुस्साहस को शीघ्र भाँप गये। पर क्रोध करने के स्थान पर उन्होंने मधुर स्वर में कहा, "जो मैं कहता हूँ वही लिखो, अपनी मत कहो"। मैं अवाक् रह गया।

मैं ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के सारे सदस्यों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने अनेक महान कार्यों में व्यस्त रहने पर भी इस पुस्तिका के प्रकाशन में अपना पूर सहयोग दिया।

कश्मीर शैवदर्शन वर्ण जाति धर्म आदि पर विशेष ध्यान नहीं देता है, अतः इस अमृतेश्वर-भैरव स्तोत्र का मानसिक या वाचिक अध्ययन, कोई भी व्यक्ति स्त्री हो य पुरुष, बूढ़ा हो या जवान, विवाहित हो अविवाहित आस्तिक हो या नास्तिक, श्रद्धा के साथ सदा कर सकता है। केवल एक बात का विशेषरूप से ध्यान रखना है कि वा पूर्णरूप से शाकाहारी हो। अन्यथा यह सुखदाता के स्थान पर दुःखदाता बनेगा।

हमें आशा है कि सद्गुरु महाराज की इस अमृतवाणी का मन्थन समुद्रमन्थन वे समान देवताओं और दानवों के लिए लाभकारी होगा।

आश्विन कृष्ण पक्ष चतुर्थी
तदनुसार
४ अक्टूबर सन् १९९३.

प्रो० मखन लाल कुकिलू
F-115, सरिता विहार,
नई दिल्ली - 110 044

॥ॐ श्री गुरवे नमः॥

ॐ ग्लूं गं गणपतये नमः॥ १०॥
ॐ सत् गुरु महाराज की जय जय जय॥ १०॥
ॐ आञ्जनेयाय रामदूताय महाबलाय स्वाहा॥ १०॥
ॐ महाबलाय स्वाहा महाबलाय स्वाहा॥ १०॥
ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय,
ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय॥ १०॥
ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरीभ्यश्च।
सर्वतः शर्व सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः॥ १०॥

हे शर्व ! अर्थात् हे परभैरव ! हे महाभीषण रूपवाले ! (कोई आपके सामने ठहर नहीं सकता है और न कोई आपसे कुछ ऊँचे स्वर में कह सकता है, जो कुछ आप करते हो कोई उसका विरोध नहीं कर सकता है) आपकी अघोरशक्ति घोर शक्ति और घोरघोरतरी शक्तियाँ चारों ओर से व्याप्त हैं, ये सीमित नहीं हैं, मैं आपकी इन अनन्त शक्तियों को प्रणाम करता हूँ जो भीषण हैं और जिनके सामने कोई ठहर नहीं सकता है।

शैवी-मार्ग में यद्यपि अनन्त शक्तियाँ हैं, पर प्रधान रूप से तीन शक्तियाँ मानी जाती हैं। वे हैं अघोर शक्ति, घोर शक्ति और घोरघोरतरी शक्ति। अघोर शक्तियाँ अनन्त हैं जो साधनापथ पर चलनेवाले साधक की सहायक हैं। ये शैवी साधक को अपने इष्टदेव के ज्ञान क्रियारूपी चरणों पर धकेलती हैं, यदि वह कहीं मार्ग में अटका हो। इन्हीं को पराशक्ति के नाम से भी पुकारा जाता है। परम-शिव दयानिधि हैं पर अनन्त भट्टारक विधि-विधान के कट्टर अनुयायी हैं। यदि अनन्त भट्टारक किसी को दण्ड देता है तो परम शिव उसे प्रेम से गले लगाते हैं क्योंकि अघोर शक्तियों ने उस साधक पर कृपा की होती है और उसे परम शिव के पास कंटीली राहों से उभारकर धकेला होता है। इन अघोर शक्तियों का काम लौकिक प्रशासनिक-क्षेत्र में मुख्य सचिव का-सा होता है। जैसे मुख्य सचिव जनता के अटके हुए कार्यों को सिद्ध करने के लिए विशेष अधिकारी का सन्देशवाहक होता है उसी तरह से ये अघोरशक्तियाँ पर-भैरव की सन्देशवाहिका होती हैं।

परापरा शक्ति के अपर नाम से पुकारी जानेवाली घोर शक्तियाँ भी अनन्त हैं। साधना-पथ पर चलनेवाले साधक को ये शक्तियाँ अघोर शक्ति मार्ग की ओर जाने नहीं देती। अतः वह भय के कारण बीच में ही रुक जाता है। वह इस प्रयास को सहन नहीं करता, पर अघोर शक्तियाँ बीच में आती हैं और उसे पतन से बचाती हैं।

घोरघोरतरी शक्तियाँ भी अनन्त हैं। इन्हें अपराशक्ति के नाम से भी पुकारा जाता है। कहा है कि

विषयेष्वेव संलीनानधोऽधः पातयन्त्यणून।
रुद्राणून्याः समालिङ्य घोरतर्योऽपराः स्मृताः।।

अर्थात् घोरघोरतरी शक्तियाँ सांसारिक विषयों में लीन करके प्राणियों को नीचे नीचे पाताल की ओर धकेलती हैं। उन्हें साधनामार्ग से विमुख करती हैं। ये शक्तियाँ अतीव भयानक हैं।

ॐ जुं सः अमृतेश्वर-भैरवाय नमः।। १०।।

इस अमृतेश्वर-भैरव मन्त्र के प्रथम बीजाक्षर "ॐ" की व्याख्या–

अन्तरालीन तत्त्वौघं चिदानन्दघनं महत्।
यत्तत्त्वं शैवधामारूयं तदोमित्यभिधीयते।।

जिसने ३६ तत्त्वों का समूह अर्थात् पृथ्वी तत्त्व से लेकर शिव तत्त्व तक सारे तत्त्वों को अपने स्वरूप में घोलकर धारण किया है, जो स्वयं चित् स्वरूप तथा आनन्दरूप है, सबसे महान है और परमशिव का धाम (स्थान) है, वही "ॐ" इस शब्द से पुकारा जाता है।

इसी उपरोक्त मन्त्र के दूसरे बीजाक्षर "जुं" की व्याख्या–

तादृगात्मपरामर्शशालिनी शक्तिरस्य या।
देशकालापरिच्छिन्ना सा जुं शब्देन कथ्यते।।

चिदानन्दघन शिवधाम की देश काल और आकार से रहित जो शक्ति इसी चिदानन्दघन स्वरूप का लौट लौट के परामर्श करती है, वही शक्ति "जुं" इस नाम से कही जाती है। अर्थात् देश काल और आकार की कलना से अतीत निरन्तर शिवधाम परामर्श से शोभायमान बनी हुई शक्ति ही "जुं" शक्ति है।

उपरोक्त अमृतेश्वर-भैरव मन्त्र के तीसरे बीजाक्षर "सः" की व्याख्या–

सिसृक्षोल्लेखनिर्माण शक्ति त्रितय निर्भरा।
जगतो येशिता शक्तिः सा स इत्युच्यते स्फुटम्।।

इस सारे संसार की जो ईशिताशक्ति है अर्थात् जो शक्ति इस संसार की नियामक या शासन करनेवाली है, और जो शक्ति प्रकट रूप से, सिसृक्षा अर्थात् सारे जगत् को उत्पन्न करने की तैयारी, उल्लेख अर्थात् जगत् उत्पन्न करने के लिए भिन्न-भिन्न पदार्थों के एकत्रीकरण की योजना, और निर्माण अर्थात् संयोजित ढंग से इस विश्व की साकार रचना, इन तीन शक्तियों से परिपूर्ण है अथवा जो शक्ति इच्छा, ज्ञान और क्रियारूपा है, वही शक्ति "सः" इस नाम से पुकारी जाती है।

इस उपरोक्त अमृतेश्वर-भैरव मन्त्र में स्थित "अमृतेश्वर" शब्द की व्याख्या–

स्वशक्त्यभिव्यक्तिमये मोक्षेऽस्यैश्वर्य योगतः।
स्वोपासकानाममृतेश्वरत्वं तस्य सुस्फुटम्।।

इस अमृतेश्वर-भैरव की यह महान विशेषता है कि इस विस्तृत संसार की रचना करने के पश्चात् इनका मुख्य ध्येय यही रहता है कि किस प्रकार इस जगत् को मोक्ष-धाम तक पहुँचावें। इसीलिए इस शिव को (या जीव को) अपने स्वातन्त्र्ययोग से जब उन्मीलना नामक समाधि में अपनी शक्तियों का पूर्ण साक्षात्कार होता है तो वह अपने उन भक्तों को, जिन्हें केवल इस शक्ति-साक्षात्कार की उत्कट इच्छा होती है, (इस इच्छा के बिना जिनमें अन्य सांसारिक इच्छाओं का सम्पूर्ण अभाव होता है) स्वात्मरूप अर्थात् अमृतेश्वररूप ही बनाता है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि अमृतेश्वर-भैरव अपने उपासकों को केवल स्व शक्तिरूपी अमृत का पान कराके ही अमृतेश्वर नहीं बनाता है अपितु विषपान कराने से भी स्वात्मरूप बनाता है। विष अमृत का ही दूसरा नाम है। विष में व्याप्त अमृतत्व को न समझनेवाले साधारण साधक ही विष को 'ज़हर' के रूप में समझते हैं।

अमृतेश्वर-भैरव मन्त्र में उल्लिखित "भैरव" शब्द की व्याख्या–

नीलहर्षादि भेदेन यद् बाह्याभ्यन्तरं जगत्।
अहमित्यामृशन्पूर्णो भैरवः समुदाहृतः।।

जो नीला, पीला, घट, पट आदि बाह्य (बाहरी) और सुख, दुःख, काम, क्रोध, वासना आदि आन्तरिक जगत् है उसे 'अहं' परामर्श से रंगने वाला, अर्थात् सुख-दुःख आदि जो है वह भी शिवरूप है, और नीला-पीला आदि जो है वह भी शिवरूप है ऐसी धारणावाला, "भैरव" इस नाम से पुकारा जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि बाह्य अथवा आभ्यन्तर इन्द्रियों के माध्यम से हर स्थान पर पर-भैरव का चित्प्रकाश ही प्रकट होता है। इसी प्रकाश-विमर्शात्मक समरसता को जतलानेवाला "भैरव" शब्द है। इसी रूप में प्रकाशमान होने और विमर्श भी किये जाने के कारण यह पूर्ण है।

अमृतेश्वर-भैरव मन्त्र के अन्त में आये हुए "नमः" शब्द का वर्णन–

देह प्राण सुखादीनां न्यग्भावाद् भक्त संहतेः।
या चिदात्मनि विश्रान्तिर्नमः शब्देन सोच्यते।।

जब अमृतेश्वर-भैरव के भक्तवर्ग देह प्राण पुर्यष्टक व शून्य शरीर या जाग्रत स्वप्न सुषप्ति व तुर्य शरीर को दबोच लेते हैं या तिरस्कृत करते हैं तो वे इस देह प्राण आदि को चिदात्मा में ही स्वाहा करते हैं। स्वाहा करने की यही प्रक्रिया "नमः" शब्द से पुकारी जाती है।

अब अगले दो श्लोकों में अर्थात् त्रयीसप्तचतुर्युग्म में अमृतेश्वर-भैरव के उस भैरवभाव को दिखाया है जिसमें उसने भैरवी (अमृतेश्वरी) को भी अपने साथ रखा है और दूसरे श्लोक आत्मेन्दुधामनि० में अमृतेश्वरी का वह रूप दर्शाया है जिसमें अमृतेश्वरी ने भैरवभाव को कहीं नहीं छोड़ा है। इस तरह यह सिद्ध होता है कि शिव-शक्ति संघट्ट ही परिपूर्ण भैरवभाव है।

पहला श्लोक अमृतेश्वर का वह रूप है जिसमें अमृतेश्वरी को भी उन्होंने अपने में समाया है। यह मातृका चक्र से सम्बद्ध है जैसे—

त्रयी सप्तचतुर्युग्ममये त्रितयवर्त्मनि।
स्थितो यः शक्ति सहितः स जयत्यमृतेश्वरः।।

जो यह अमृतेश्वर-भैरव पहले "त्रयी" अर्थात् अ (अनुत्तर), इ (इच्छा), उ (उन्मेष) स्वरूप तीन ह्रस्व स्वरों के रूप में, फिर "सप्त" अर्थात् आ (आनन्द) ई (ईशन) ऊ (ऊर्मि) और चार षण्ठ स्वर या अमृत बीजाक्षर या शून्य चतुष्क (परभैरव की अनाश्रित शिवमयी अवस्था को जतलाने के कारण इस नाम से भी प्रसिद्ध) ऋ, ॠ, लृ, लृ स्वरूप सात स्वरों के रूप में, बाद में "चतुः" अर्थात् ए, ऐ, ओ, औ, इन चार सन्ध्यक्षरों के रूप में, और फिर "युग्ममये" अर्थात् अनुस्वार (.) तथा विसर्जनीय (:) इन दो स्वरों के रूप में ह्रस्व (अ, इ, उ ये तीन ह्रस्व स्वर हैं)। दीर्घ (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये नौ दीर्घ स्वर हैं) और षण्ठ (ऋ, ॠ, लृ, लृ चार षण्ठ स्वर) रूप तीन प्रकार के मार्गों में अपनी शक्ति अमृतेश्वरी के साथ, अर्थात् १६ स्वर भैरवीय हैं, और 'क' से लेकर 'ह' तक का सारा व्यञ्जन वर्ण समुदाय शक्ति सम्बन्धित हैं। यही मातृका चक्र में भैरव और भैरवी का कभी न अलग होनेवाला मिलन है, ठहरे हुए हैं, उसी अमृतेश्वर-भैरव नाथ की जय जयकार हो।

दूसरा श्लोक अमृतेश्वरी का वह रूप है, जिसमें उन्होंने अमृतेश्वर को अपने से अलग नहीं रखा है। यह वर्णन मन्त्रभाव से सम्बन्धित है—

आत्मेन्दुधामनि युगेश नरेश पुत्र—
चित्रां त्रिशूल बिलधामनि सृष्टशक्तिम्।
वैसर्गिके चितिपदेऽप्यथ पुण्ड़रीकां
काञ्चित्परां त्रिक परां प्रणमामि देवीम्।।

त्रिक-पद्धति में "सौः" अमृतबीजहृदय के नाम से जाना जाता है। यह पारिभाषिक नाम है इस बीजाक्षर का। यदि शक्तिपातवश पर-भैरव ने किसी को इस बीजाक्षर का रहस्य बताया हो तो उस वीर को किसी गुरु के पास दीक्षा लेने के लिए जाने की आवश्यकता नहीं होती है। याद रहे, अन्य मन्त्रों के लिए गुरु

दीक्षा का होना अनिवार्य है नहीं तो उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। पर यह ''सौः'' बीज एकमात्र मन्त्र है जिसके लिए गुरु से दीक्षा लेने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है।

इस बात का उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा कि हमारे आदरणीय सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप श्री लक्ष्मणजी को स्वयं पर-भैरव ने इस अमृतबीज हृदय का साक्षात्कार कराया था। इस रहस्य का वर्णन उन्होंने सन् १९९० ई० के अप्रैल मास में उस समय किया जब ईश्वराश्रम के निकटवर्ती श्रीमती कमला बाबा के परिसर में एक दिन अचानक उपस्थित दम्पत्तियों से भैरव-भैरवी नृत्य करवाके वे स्वात्म निष्ठ रहे। अन्त में उन्होंने जो अमृतमय शब्द कहे वे इसी उपरोक्त अवस्था के परिचायक थे। समाहित भक्त जनों ने भली-भाँति उस समय इस रहस्य को समझा होगा। बोल सद्गुरु महाराज की जय।

इसी ''सौः'' बीजका प्रस्तुत श्लोक में वर्णन करते हुए आचार्य अभिनव गुप्तजी कहते हैं कि आत्मा नर रूप चन्द्रमा का बीजाक्षर ''स'' है। सूर्य का बीजाक्षर ''औ'' है और अग्नि का बीजाक्षर विसर्ग '':'' है। इसी को पराबीज कहते हैं और यही अमृतेश्वरी का मूलमंत्र है। इस ''स'' बीजाक्षर में युग = चार, ईश = ग्यारह, नरेश पुत्र = सोलह, कुल मिलाकर इक्तीस अर्थात् पृथ्वी तत्त्व से लेकर माया तत्त्व तक जो इक्तीस तत्त्व हैं, उन तत्त्वों से यह अमृतेश्वरी विचित्र बनी हुई है। शक्तिस्वरूप त्रिशूल शूलबीजाक्षर से पुकारा जाता है। मन्त्र भाग में यह ''औ'' को बतानेवाला है। इसमें इच्छा ज्ञान तथा क्रिया शक्ति का संगम है और शुद्ध विद्या, ईश्वर तथा सदाशिव तत्त्वों को इस ''औकार'' ने अपने में समाया है। विसर्ग (:) सम्बन्धित अनुत्तरधाम में शिव-शक्ति संघट अथवा शिव- तत्त्व और शक्ति-तत्त्व का समरसीभाव है। अर्थात् 'अ' कला जब विसर्ग स्वभावरूपता को स्वीकार करती है तो वह विसर्ग (:) बन जाती है। इसी विसर्ग में अनाश्रितशक्ति सहित शिव समाया हुआ है। इस विसर्ग सम्बन्धित अनुत्तर-धाम में चिद् 'अनुस्वार' और आनन्द विसर्ग अर्थात् ''अं और अः'' संपुटीकार बने हुए हैं। जैसे संकोच विकास से युक्त कमल के फूल में कमलपत्र संपुटीकार (एक-दूसरे से जुड़े हुए डिब्बे के आकार के) होते हैं उसी तरह से इस चितिपद अर्थात् अनुत्तरधाम में भी शिव और शक्ति संपुटाकार हैं। इस प्रकार से अवर्णनीय स्वरूपवाली, त्रिकमार्ग में सर्वोत्तम मानी जानेवाली देवी अमृतेश्वरी पराशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

क्षेप (फेंकना अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित जगत् को अपने स्वरूप से बाहर दिखाना) ज्ञान (अपने स्वरूप से जगत् को भिन्न दिखाकर स्वातन्त्र्यशक्ति से फिर स्वरूपमय परामर्श करना) संख्यान (अर्थात् जगत् और उसके पदार्थों को अलग अलग दिखाकर फिर उन्हें भी एक-दूसरे के ज्ञान से अलग रखना) गति (अर्थात् स्वात्मदर्पण में ठहरे हुए जगत् के अलग होने पर भी उसे स्वात्मरूपता से स्थापित करना) नाद (अर्थात् साकार और निराकार ज्ञान का परामर्श करना फिर उसे अपनी ही स्वरूप परामर्शरूप तुरीय दशा में लीन करना) इस प्रकार क्षेप, ज्ञान, संख्यान, गति और नाद रूपी पाँच प्रकार की कलना क्रमशः करती हुई, तथा इस काल कलना के कलंक की ग्रसनशीला होने के कारण प्रकाशमान बनी हुई काल संकर्षिणी भगवती परा देवी काली से यह प्रस्तुत श्लोक सम्बन्धित है–

श्रीमत्सदाशिव पदेऽपि महोग्र काली
भीमोत्कट भ्रुकुटिरेष्यति भंगभूमिः।
इत्याकलय्य परमां स्थितिमेत्य काल-
संकर्षिणीं भगवतीं हठतोऽधितिष्ठेत्।।।

वास्तव में कार्य अकार्यरूप शंकायें (अर्थात् क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, क्या पेय है और क्या अपेय है, क्या स्पर्श करने योग्य और क्या स्पर्श करने अयोग्य है) योगी के लिए सदाशिव दशा की प्राप्ति तक विघ्नरूप में अवस्थित रहती है। उस शोभनीय सदाशिव दशा के पद पर भी भयंकर और टेढ़ी भौंहें नचाती हुई महान उग्र रूप धारण करनेवाली काली योगी को स्वात्म परामर्श से वंचित करके फिर से गिराने की योजना करेगी, इस बात का पूरी तरह से निश्चय करके योगी अनाख्य स्थिति को पाकर भगवती काल संकर्षिणी रूपी परादेवी को हठपूर्वक अपने स्वरूप में विलीन करे। अर्थात् देह-प्राण-पुर्यष्टक शून्य प्रमातृ पद को योगी उसी स्वरूप में विलय करके काल संकर्षिणी भगवती काली के अनन्त आनन्द रस पूर्ण स्वरूप में समावेश करे।

तन्मध्ये तु परादेवी दक्षिणे च परापरा
अपरा वामश्रृंगे तु मध्यश्रृंगोर्ध्वतः श्रृणु।
या सा संकर्षिणी काली परातीता व्यवस्थिता।।।

ज्ञानशक्तिरूपी सदाशिव के नाभिस्थान पर विद्यमान त्रिशूल के तीन तेगों की महिमा इस प्रकार कही गई है कि इन तीन तेगों में से मंझले भाग के तेग पर परादेवी विराजमान हैं, दायीं ओर स्थित तेग पर परापरा देवी विराजमान हैं और बायीं ओर विद्यमान तेग पर अपरादेवी ठहरी हुई हैं। मंझले सिरे के ऊपर स्वयं कालसंकर्षिणी काली आसीन है जो परातीता भट्टारिका के नाम से सुप्रसिद्ध है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि इच्छा ज्ञान और क्रियामय त्रिशूल एक ही अलौकिक तथा यौगपदिक स्पन्दन के तीन कोण हैं। शक्ति त्रिशूल के इन्हीं तीन कोणों को क्रम से भगवती के परा, परापरा, और अपरा रूपों की स्फुरणा माना जाता है। इनमें से परा नाम का कोण परावाणी के साथ, परापरा नाम का कोण पश्यन्ती और मध्यमा वाणियों के साथ और तीसरा अपरा नाम का कोण वैरवरी वाणी के साथ सम्बन्ध रखता है। लौकिक व्यवहार में अनुभव परा भगवती है। स्मरण परापरा, और विकल्प या अपोहन अपरा देवी है। स्वात्मज्ञान को विकसित करनेवाली अभेदरूपिणी विद्या परातीता है।

कृत्वाधार धरां चमत्कृति रस प्रोक्षाक्षण क्षालिता–
मात्तैर्मानसतः स्वभावकुसुमैः स्वामोदसंदोहिभिः।
आनन्दामृतनिर्भर स्वहृदयानर्घार्घपात्र क्रमात्
त्वां देव्या सह देहदेव सदने देवार्चयेऽहर्निशम्।।

आचार्य अभिनव गुप्त ने इस श्लोक में अभेदमयी पूजा का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि जैसे साधारण पूजा करनेवाला पहिले पूजास्थान को भली-भाँति खड़ा करता है उसी तरह मैंने (अभिनव गुप्त ने) भी सबसे पहले ''मूलाधार'' नामक पूजास्थान को (यह वह स्थान है जहाँ से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है) अच्छी तरह से सजाया। जैसे साधारण पूजा करनेवाला फूल आदि पूजा की सामग्री इकट्ठा करके लाता है वैसे ही मैंने भी मन के वे फूल इकट्ठे किये हैं जिनमें किसी भी प्रकार की मुरझाहट या कोई विकार देखने में नहीं आता है, क्योंकि ये

फूल विभिन्न ऋतुओं में पाये जानेवाले साधारण फूल नहीं हैं, जिनमें रूप रस और गन्ध की अधिक मात्रा या कमी का प्रभाव देखने में आता है। ये हर समय अलौकिक महक की छटा से शोभायमान बने हुए हैं और इन फूलों को प्रयोग में लाने से पहले चमत्कृति-रस से अर्थात् परासंवित्ति रूपी जल से धोकर अलौकिक बनाया गया है। जैसे साधारण पूजा करनेवाला "अर्घ्यपात्र" में शुद्ध जल डालकर इष्टदेव पर डालता है। (अर्घ्यपात्र तांबे का बनाया हुआ एक विशेष आकार का पात्र होता है जो जल आदि डालने के लिए पूजा के समय काम आता है) उसी तरह मैंने भी बिश्वहृदयरूपी अनमोल अर्घ्यपात्र में पूजा के लिए चिदानन्द अमृत डाला है। जैसे साधारण पूजक इष्टदेव की पूजा नियत समय पर मन्दिर में जाकर करता है इसी प्रकार हे भगवन्! मेरा (अभिनव गुप्त का) शरीर भी अमृतेश्वर-भैरब का मन्दिर है, ऐसे शरीर रूपी मन्दिर में मैं आप को अमृतेश्वरी के संग-संग रात-दिन पूजा करता हूँ अर्थात् प्रतिक्षण शिव-शक्ति समावेश तत्पर रहता हूँ।

नाना स्वाद रसामिमां त्रिजगतीं हृच्चक्रयन्त्रार्पिताम्
ऊर्ध्वाधस्त विवेक गौरवभंरा न्निष्पीडच निष्यन्दितम्।
यत्संवित्परमामृतं मृतिजराजन्मापहं जृम्भते
तेन त्वां हविषा परेण परमे सन्तर्पयेऽहर्निशम्।।

भूः लोक, भुवः लोक और स्वः नामक लोक, अथवा सारा संसार, अथवा एक सौ अठारह भुवन अथवा तीन रूपों वाली जो भी कुछ वस्तु नियमित कही गई है, ऐसी त्रिजगती को अनेक प्रकार के आस्वादन रस से परिपूर्ण अर्थात् प्रतिसमय नवीनतम चमत्कृति रस की विद्यमानता से अपूर्व बनी हुई इस त्रिजगती को हृदयरूपी चक्र के यन्त्र पर चढ़ाकर (हृदय में एक ऐसा चक्र होता है जिसकी गति सुदर्शन चक्र से भी तीव्रतर होती है) फिर उसे एक क्षण में कभी ऊपर की ओर कभी नीचे की ओर, कभी बायीं ओर कभी दायीं ओर कभी पूर्व से, कभी पश्चिम से, कभी उत्तर में और कभी दक्षिण में घुमाकर अपने विवेक की महिमा की अतिशयता से पूरी तरह से निचोड़कर अर्थात् इस त्रिजगती में क्या क्या है यह पता लगाने के लिए, अन्दर और बाहर आता जाता हूँ। इस प्रकार की प्रक्रिया से जो संवित् उदय में आती है वह तो जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे को मूल से उखाड़ने में समर्थ सर्वोत्कृष्ट अमृत है। हे देवाधिदेव अमृतेश्वर नाथ! मैं अमृतेश्वरी के संग-संग आपको उसी परम अमृत रस से रात-दिन नहाता हूँ अर्थात् उसी परमामृतरूपी आहुति से रात-दिन स्वाहा करता रहता हूँ।

कालाग्नि रुद्रात्प्रसृतं च तेजो
भूरि स्फुटं दीप्ततरं विचिन्त्यम्।
ऊर्ध्वे स्थिता चन्द्रकला च शान्ता
पूर्णामृतानन्दरसेन देवि।।
तदोभयोर्वह्नि विषानुयोगात्
तेजश्शशांकौ द्रवितौ च यस्मात्।
तेजश्शशांक स्फुट मिश्रितत्वात्
भवेत् तदार्कं त्ववताररूपम्।।
परस्पर समाविष्टौ चन्द्रेऽग्नीष्टीटिभे शशी
चन्द्रं सृष्टिं विजानीयादग्निः संहार उच्यते
अवतारो रवि प्रोक्तो मध्यस्थः परमेश्वरः।।।

अभ्यास करते-करते साधक को बायें पैर के अंगूठे से (कालाग्निरुद्रात)ऊपर की ओर (ब्रह्मरन्ध्र की ओर) तेज की ऐसी ज्योति उठती है जो पूर्णरूप से अत्यन्त सफेद रुई के बड़े ढेर की जैसी होती है और जो आग की दहकती लपटों के समान निरन्तर बढ़ती रहती है। यह तेज़ कहाँ से आता है और किस तरह अविच्छिन्न धारा की तरह निकलता रहता है, इस प्रकार इस तथ्यपर भली भाँति विचार करना चाहिए। दूसरी ओर से हमारे शरीर में दूसरी प्रक्रिया पहली प्रक्रिया के साथ-साथ गतिशील होती है जो ऊपर की ओर से अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र से नीचे की ओर कार्यरत रहती है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मरन्ध्र में, बायें पैर के अंगूठे से उठनेवाले चमकते हुए तेज की अपेक्षा, शान्ति देनेवाली चन्द्रकला रहती है जो चन्द्रकला की नाई मन को आह्लादित करनेवाली और आनन्ददायक अमृत रस से स्निग्ध बनी हुई होती है। इस तथ्य का भी भली-भाँति विवेचन करना चाहिए।

इस प्रकार इन दो प्रक्रियाओं के साथ-साथ एक और घटना अभ्यास करते करते घटती है कि विष अर्थात् अमृत (यहाँ विष का अर्थ ज़हर नहीं) वह्नि (तेज)दोनों के संयोग से अर्थात् अमृत ब्रह्मरन्ध्र से नीचे की ओर टपकता है और तेज नीचे से ऊपर की ओर जाता है (ये दोनों क्रियायें साथ-साथ होती हैं)। अब जो तेज और अमृत प्रस्फुटित हुआ उन दोनों का मिश्रण अर्थात् एकीकरण होता

है। इस मिश्रण के पश्चात् एक और प्रक्रिया उदित होती है अर्थात् चौथी घटना इस अभ्यास क्रिया में घटती है वह ''अर्क'' या अवतार रूप मानी जाती है। क्योंकि चन्द्रमा में अग्नि और अग्नि में चन्द्रमा जब एक दूसरे में समाविष्ट होते हैं अर्थात् अभ्यास करते-करते जब हृदय के वामभाग में तेज एक ओर से ऊपर की ओर जाता है तो दूसरी ओर हृदय के दक्षिण भाग में यह अमृत रूप में नीचे की ओर जाता है। इन दोनों का एक मिश्रित भाग ब्रह्मरन्ध्र की ओर फिर लौटता है और ब्रह्मरन्ध्र को खण्डित करता है। वहाँ से फिर अमृतभागपूर्ण खण्ड दक्षिण अंगूठे की ओर जाता है और वह एक समय सृष्टि का कारण बनता है, दूसरा तेज-भाग पूर्ण खण्ड दूसरे समय संहार का और फिर हृदयस्थ संविन्मय अमृतेश्वर ही 'रवि' या 'अवतार' के नाम से जान्म जाता है।

ततः सकाशात्प्रभवाप्ययौ स्तो
यस्मादयं विश्वसमग्रभेदः।
एतच्च विद्वान् विदितार्थभावो
ध्यायेत युक्त्यात्मचिदर्करूपम्।।

पिछले श्लोकों में समझाई गई यौगिक प्रक्रिया के परिशीलन के परिणामस्वरूप ही सृष्टि (भैरव-स्वरूप का विकास) और संहार (भैरव-स्वरूप का संकोच) तथा जगत् का यह सारा भेद अर्थात् अन्तर्मुखरूपी सृष्टि और बहिर्मुखरूपी संहार प्रवर्तन में आता है। इस रहस्य को जाननेवाला एक साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता है। परम पद पर आसीन स्वरूप-निष्ठ विद्वान ही अपनी अभ्यास चातुरी की युक्ति से (गुरु उपाय से नहीं) ऊपर नीचे तथा सब ओर अवस्थित इस चिदात्म सूर्यदेव का सतत् परामर्श करे।

द्वारेशा नवरन्ध्रगा हृदयगो वास्तुर्गणेशो महान्
शब्दाद्या गुरवः समीरदशकं त्वाधारशक्त्यात्मकम्।
चिद्देवोऽथ विमर्शशक्ति सहितः षाड्गुण्यमंगावलि-
र्लोकेशाः करणानि यस्य महिमा तं नेत्रनाथं स्तुमः।।

हम उस अमृतेश्वर-भैरव नाथ को प्रणाम करते हैं जिसका शरीर विराट् दिव्य देह का प्रतिनिधित्व करता है। दो आँखें, दो कान, दो नासिका विवर, मुँह,

मल और मूत्र का स्थान ये नवद्वार हैं, इनमें गया हुआ एक और दसवां द्वार है जो अन्दर ही अन्दर वीर्य के रूप में विद्यमान होता है। इस प्रकार ये दस द्वार जिस भैरव नाथ के दस द्वारपाल हैं। इस भैरवनाथ के हृदय में (वैसे तो प्रत्येक जीव के हृदय में परम शिव का चित्र अंकित होता है पर वह स्वयं विश्वहृदय में प्रकाशमान है और ससीम होते हुए असीम है) वास्तोष्पतिदेवता ठहरते हैं। इस नेत्रनाथ के अपान और प्राणरूप दो द्वार रक्षक हैं जो क्रमशः कुमार और गणेश हैं। मातृका और मालिनी (अ से क्ष तक वर्ण समुदाय मातृका है और न से फ तक वर्ण समुदाय मालिनी है) शब्द ही इनके गुरु हैं जो इन्हें ज्ञान प्रदान करते हैं अथवा चर्यासिद्ध गुरु, मेलापसिद्ध गुरु, योगसिद्ध गुरु, शाक्तसिद्ध गुरु और शांभवसिद्ध गुरु क्रमशः इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूप पाँच तन्मात्र हैं। इस अमृतेश्वर का विराट् शरीर दस वायुपथों का आधार है अर्थात् इस अमृतेश्वर की ही चारों ओर एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न स्वभाववाली ऊर्ध्व ऊर्ध्ववर्ती मार्गों में अपनी अनन्त शाखायें फैली हुई हैं। यह चिद्देव स्वयं विमर्श शक्ति से घेरा हुआ है अर्थात् चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया से ओत-प्रोत है या दूसरे शब्दों में कहा जाये कि स्वातन्त्र्यशक्ति से शोभायमान है। इस नेत्रनाथ के अंग सर्वज्ञता (सब कुछ जानने का भाव) तृप्तिः (भूख प्यास का अभाव, सदा भर-पेट) अनादिबोध (जिसके ज्ञान का न आरम्भ हो न अन्त, असीम ज्ञानवान) नित्यमलुप्तशक्ति (जिसकी शक्ति कभी क्षीण नहीं होती है, ना ही किसी प्रकार की थकान पैदा होती है) स्वतन्त्रता (प्रत्येक कार्य करने में स्वयं समर्थ) और अनन्त शक्ति (अन्तहीन शक्ति का होना) ये छः शक्तियाँ हैं। इस भैरवनाथ के इन्द्र, अग्नि, यम, नैनृत, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्म और विष्णु ये दस लोकपाल दस करण (इन्द्रिय वर्ग) हैं। ऐसी महिमावाले उस नेत्रनाथ की हम स्तुति करते हैं।

यहाँ यह बात याद रखनेयोग्य है कि पर-भैरव को नेत्रनाथ इसीलिए कहते हैं कि नयनात् त्राणात् नेत्रं, नेत्राणां नाथः नेत्रनाथः। अर्थात् पहले ये अमृतेश्वर साधक को अच्छे धाम पर पहुँचाते हैं फिर स्वात्मनिष्ठ बनाकर उसे अपने स्थान से नहीं गिराते हैं।

विगलति भवदौर्गत्यं मोक्षश्री श्रयति हृत्कजं कचति।
प्रसरति परमानन्दो यत्र तदीशार्चनं जयति।।

जिस अमृतेश्वर-भैरव की पूजा करने में निराशा, पतन, आधि-व्याधि, जन्ममरणरूप संसार की दुर्गति विनष्ट हो जाती है, मोक्षरूपी लक्ष्मी जिसकी पूजा में साधक को अपनाती है अर्थात् साधक को मुक्त करती है, हृदयरूपी कमल ज़िस अमृतेश्वर-भैरव की पूजा में सम्पूर्ण रूप से खिल उठता है और जिस अमृतेश्वर-भैरव की पूजा में चिन्मात्ररूप आत्मसत्ता चारों ओर से व्याप्त होती है, उस अमृतेश्वर-भैरव की पूजा का जय जयकार हो।

ॐ जुं सः अमृतेश्वर भैरवाय नमः।। १०।।
कर्पूर गौरं करुणावतारं संसार सारं भुजगेन्द्र हारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि।।

पर-भैरवी अमृतेश्वरी के संग-संग रहनेवाले उस पर-भैरव को प्रणाम करता हूँ जो काफूर के समान सफेद रंग के हैं, जो दया के पूर्ण अवतार है, जो इस असार संसार में एकमात्र सार रूप हैं, जो माला या हार के रूप में सांपों को धारण करते हैं और जो हृदयरूपी कमल में सदा ठहरे हुए हैं।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि हमारे सद्गुरु महाराज ने प्रचलित पाठ सदा रमन्तं के स्थान पर सदावसन्तं को ही शैवमत के अनुसार प्रामाणिक पाठ माना है।

क्लेशान्विनाशय विकासय हृत्सरोज-
मोजो विजृम्भय निजं नरिनर्तयांगम्।
चेतश्चकोर चिति चन्द्र मरीचि चक्रं
आचम्य सम्यगमृतीकुरु विश्वमेतत्।।

हे भगवन् ! मेरे सारे (अविद्या अस्मिता आदि) क्लेशों को नष्ट करो, मेरे हृदयरूपी कमल को विकसित करो, मेरे में स्थित परमतेज को प्रकाशित करो, मेरे अंग अंग को अपनी भक्तिरूपी सुरा से विवश बनाओ। जैसे चाँद के प्रेम में रंगा हुआ चकोर पक्षी चन्द्र किरणों को पीकर सारे विश्व को चन्द्र प्रकाशमय

समझता है (चकोर पक्षी को चन्द्रमा का इतना प्रेम होता है कि वह उसे छूने के लिए आकाश में इतनी ऊँचाई पार करता है कि उसका कहीं नामोनिशान ही दिखाई नहीं देता है, या धरती पर दहकते अंगारों को चन्द्र तुल्य समझकर उनको छूने से जलकर राख होता है) उसी प्रकार भक्त की अभिलाषा है कि उसका मनरूपी चकोर भी परासंवित् रूपी शीतल प्रकाश के लिए विवश है अतः उसे मरीचि चक्र अर्थात् परा (इच्छा शक्ति रूप), परापरा (ज्ञान शक्ति रूप), अपरा (क्रिया शक्ति रूप) रूप शक्ति चक्र का आनन्द रस अच्छी तरह से पिलाकर इस सारे बिश्व को अमृतमय बनाओ।

भवन्मय स्वात्म निवास लब्ध-
सम्पद्भराभ्यर्चित युष्मदंघ्रिः।
न भोजनाच्छादनमप्यजस्र-
मपेक्षते यस्तमहं नतोऽस्मि।।

हे स्वामी ! आपके चिद्रूप से पूर्ण अपनी आत्मा में विश्रान्ति से पाई गई महान आनन्दरूपी ऐश्वर्य की अधिकता से आपके चरणकमलों की पूजा करनेवाला जो भक्त खाने-पीने और कपड़े आदि की भी लगातार अपेक्षा नहीं रखता मैं उस भक्त को प्रणाम करता हूँ।

आधीनामगदं दिव्यं व्याधीनां मूल कृन्तनम्।
उपद्रवाणां दलनं महादेवमुपास्महे।।

मैं उस महादेव की शरण में जाता हूँ जो मानसिक सन्तापों के लिए स्वर्गीय औषधि हैं, शारीरिक पीड़ाओं को जड़ से उखाड़नेवाले हैं और सारे उपद्रवों को नष्ट करनेवाले हैं

ध्याये नित्यं महेशं रजतगिरि निभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशु मृगवराभीति हस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिल भयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

चाँदी के पर्वत के समान सफेद, सुन्दर चन्द्रकला को मस्तक पर धारण करनेवाले, रत्नों के समान चमकीले अंगोंवाले, हाथों से कुठार, मृगछौना, वर और अभय को धारण करनेवाले, प्रसन्न मुखवाले, कमल पर विराजमान, चारों ओर देवगणों से स्तुति किये जानेवाले, बाघ की खाल को ओढ़नेवाले, संसार के आदि पुरुष, संसार में (सारे प्राणियों से) वन्दनीय, सारे भयों को दूर करनेवाले, ईशान, अघोर, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव रूप पांच मुखों वाले और इच्छा, ज्ञान और क्रियारूपी तीन नेत्रों को धारण करनेवाले अमृतेश्वर-भैरव का मैं सदा ध्यान करता हूँ।

त्वय्येव भातः स्मृति-विस्मृती ते
द्वयोरपि त्वं स्वयमेव भासि।
तथापि सांमुख्य सुखाभिवर्षिणी
स्मृतिः प्रिया ते नहि विस्मृतिर्मे।।

हे स्वामी ! आपकी स्मृति तथा आपकी विस्मृति यद्यपि आपसे ही प्रकाशित है और आप खुद भी इन दोनों में प्रकाशमान हैं फिर भी मुझे आपका स्मरण ही अच्छा लगता है, विस्मरण नहीं, क्योंकि आपका स्मरण आपके अपने सन्मुख रहने के सुख की वर्षा करता है।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दनेवा जगदन्तरात्मनि।
न कापि भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दु शेखरे।।

त्रिभुवन के ईश्वर महेश्वर अर्थात् शिव, और तीनों लोकों के अन्तरात्मा जनार्दन अर्थात् विष्णु इन दोनों में मुझे कुछ भेद-बुद्धि नहीं फिर भी जिस देवाधिदेव के मस्तक पर चन्द्रकला विराजमान है उन्हीं में मेरी (विशेष) प्रीति है।

भानुना तुहिनभानुना बृहद्भानुना च विनिवर्तितं न यत्।
येन तज्झगिति शान्तिमान्तरं ध्वान्तमेति तदुपास्महे महः।।

जो आन्तरिक अन्धकार (अख्याति) सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश से, चन्द्रमा की शीत किरणों से और प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला से दूर नहीं होता वही अन्धकार जिस अन्तःस्थित संवित् प्रकाश से एक क्षण में ही शीघ्र नष्ट होता है उसी तेज की मैं उपासना करता हूँ।

संग्रहेण सुख दुःख लक्षणं मां प्रति स्थितमिदं श्रुणु प्रभो।
सौख्यमेष भवता समागमः स्वामिना विरह एव दुःखिता।।

हे स्वामी ! मेरे लिए सुख क्या है और दुःख क्या है इसका सच्चा वर्णन मुझसे संक्षेप में सुनिये। यह समावेश में साक्षात्कार के द्वारा आप चैतन्य स्वरूप का मेल ही अर्थात् एकात्मभाव ही मेरा सुख है और आपके स्वरूप का अज्ञान ही मेरा दुःख है।

दासधाम्नि विनियोजितोऽप्यहं स्वेच्छयैव परमेश्वर त्वया।
दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः पाद संवहन कर्मणापि वा।।

हे स्वामी ! अपनी इच्छा से ही आपने मुझे अपने दास की पदवी पर लगाया फिर तो क्या बात है कि आप मुझे अपना दर्शन देकर और अपने चरण-कमलों की सेवा का काम सौंपकर मुझे कृतार्थ नहीं करते।

शक्तिपातसमये विचारणं प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।
अद्य मां प्रति किमागतं यतः स्व प्रकाशनविधौ बिलम्बसे।।

हे परमेश्वर ! मुझ पर शक्तिपात अर्थात् अनुग्रह करने के समय आपने तो सोचना चाहिए था कि मैं इसके योग्य हूँ अथवा नहीं। परन्तु आप कभी ऐसा नहीं करते। पर अनुग्रहात्मक शक्तिपात के होने पर भी यह कौन सा तरीका आपने अपनाया कि जो चिद्रूप स्वात्म प्रकाश की झलक दिखाने में विलम्ब करते हैं।

अस्तंगतवति प्राणे त्वपानेऽभ्युदयोन्मुखे।
तावत् सा कुम्भकावस्था योगिभिरनुभूयते।।

जब प्राण वायु की गति, भ्रूमध्य से होके बारह अंगुल आयामवाले बाह्य द्वादशान्त धाम पर आकर, अस्त होती है और अपानवायु अभी उदित नहीं होती है, इस दशा में एक क्षण के लिए विना प्रयत्न के बाह्य कुम्भक की अवस्था योगी के द्वारा अनुभव की जाती है।

यथा निमीलने काले प्रपञ्चो नैव दृश्यते।
तथैवोन्मीलने स्याच्चेदेतद्धयानस्य लक्षणम्।।

जैसे आँखों के बन्द करने के समय बाह्य भेदरूपात्मक जगत् की प्रतीति नहीं होती वैसे ही पर-भैरव की कृपा से अभ्यास करते करते एक साधक को आँखों के पूर्ण रूप से खुला रहते भी बाह्य जगत् की जब कुछ प्रतीति नहीं होती तो अकृत्रिमध्यान अर्थात् सच्ची साधना के ये ही चिह्न होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि निमेषावस्था और उन्मेषावस्था दोनों में जब साधक को बाह्य जगत् की विश्रान्ति होती है तो ऐसी अवस्था ही सच्चे अभ्यास की परिचायिका होती है।

प्रकाशमाने परमार्थ भानौ नश्यत्यविद्या तिमिरे समस्ते।
तदा बुधा निर्मल दृष्टयोऽपि किंचिन्न पश्यन्ति भवप्रपञ्चम्।।

जब योगी (उपरोक्त विधि से) अभ्यास करता है तो उसे परम ज्ञान रूपी सूर्य का अर्थात् चिद्भानु के प्रकाश का अनुभव होता है। उसके अविद्या रूपी अन्धकार का भी जब सम्पूर्ण रूप से विनाश होता है तो वह आत्मज्ञानी बन जाता है। उसे इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि वह क्या या क्या नहीं करता है? क्योंकि समाहित चित्तवालों की जो भी क्रिया होती है वह अहं परामर्श से रंगी हुई होती है। नित्य समाधि सुख की साक्षी होती है।

प्रनष्टवायु संचारः पाषाण इव निश्चलः।
परजीवैक्यधर्मज्ञो योगी योगविदुच्यते।।

जब योगी की प्राणवायु एक साथ रुक पड़ती है तो उस समय वह एक पत्थर के टुकड़े के समान क्रियाहीन बन जाता है और फिर वह अपनी परिमित अवस्था को अपरिमित अवस्था में विलीन होके देख पाता है। इस प्रकार का योगी वास्तविक रूप से योग को जाननेवाला कहा जाता है।

लिंगेऽत्र भक्तदयया क्षणमात्रमेकं
स्थानं व्यधाय भव मद्विहितं पुरारे।
सर्वेश ! विश्वमय ! हृत्कमलाधिरूढः
पूजां गृहाण भगवन् ! भवमेऽद्य तुष्टः।।

अभेदमयी पूजा हो या भेदमयी पूजा, दोनों पूजाओं के समय अमृतेश्वर-भैरव को अपने पास आने के लिए इन भक्ति गीतों से ही सादर बुलाया जाता है।

हे त्रिपुरासुर को मारनेवाले परमशिव ! हे सारे जगत् के स्वामी ! हे विश्वस्वरूप ! इस स्थान पर कलिपत आपके प्रतीक शिव लिंग में थोड़े से समय के लिए, भक्तों पर दयाभाव रखने के फलस्वरूप मेरे द्वारा सजाये गये इस स्थान पर आसीन होवें और मेरे हृदयरूपी कमल पर विराजमान होकर मेरी पूजा को स्वीकार कीजिये। इस तरह हे भगवन् ! आज मुझ पर प्रसन्न होवें।

भूमेर्जलात्तु पवनादनलाद् हिमांशोः
उष्णांशुतो हृदयतो गगनात् समेत्य।
लिंगेऽत्र सन्मणिमये मदनुग्रहार्थं
भक्त्यैकलभ्य ! भगवन् ! कुरु सन्निधानम्।।

एकमात्र भक्ति के द्वारा प्राप्त करने योग्य हे परमेश्वर ! प्रकृति में व्याप्त, भूमि, जल, वायु, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, यजमान और आकाश इन आठ प्रत्यक्ष देवों को अपने स्वरूप में समेटकर, मुझ पर अनुग्रह करने के लिए इस रत्नमय लिंग में व्याप्त होते हुए मेरे समीप ठहरो।

इस श्लोक में भगवान शंकर के अष्टमूर्ति रूप का सुन्दर उल्लेख हुआ है। भगवान शंकर के जो भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान ये आठ नाम हैं ये आठ नाम क्रमशः जल, भूमि, वायु, यजमान, अग्नि, सोम, आकाश और सूर्य देवों के प्रतीक हैं।

त्वं सर्वगोऽसि भगवन् किल यद्यपि त्वां
आवाहयामि यथा व्यजनेन वायुम्।
गूढ़ो यथैव दहनो मथनादुपैति
आवाहितोऽसि तथा दिशतु मां तवार्चाम्।।

हे भगवन् ! यद्यपि आप प्रत्येक स्थान में व्याप्त हैं, फिर भी मैं आपको अपने पास आने के लिए इस प्रकार बुलाता हूँ जिस प्रकार हवा यद्यपि हर स्थान पर व्याप्त हैं फिर भी पंखा झुलाने से शीघ्र किसी नियत स्थान पर प्रकट होती है।

अथवा जैसे चकमक पत्थर में या सूखे अरणि काष्ठ में आग सर्वत्र व्याप्त होती है फिर भी जैसे रगड़ने से वह चकमक पत्थर में या सूखे अरणि काष्ठ में शीघ्र प्रकट होती है, इसी प्रकार मेरे द्वारा आवाहन किये जाने पर हे नाथ ! मेरे समीप उपस्थित होवें और मुझे अपनी पूजा करने का अवसर प्रदान कीजिये।

मालाधराच्युत विभो ! परमार्थमूर्ते !
सर्वज्ञ ! सर्वकरणादि शुभ स्वभावे।
लिंगेऽत्र सन्मणिमये मदनुग्रहार्थं
भक्त्यैकलभ्य ! भगवन् ! भव सन्न्निधानम्।।

हे सर्वव्यापक ! हे मालाओं को धारण करनेवाले ! हे अपने स्वरूप से कभी न गिरनेवाले ! हे वास्तविक सत्यमूर्ति को धारण करनेवाले ! हे सब कुछ जाननेवाले ! हे एकमात्र भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य ! हे भगवन् ! मुझ भक्त पर अनुग्रह करने के लिए, सर्वज्ञता, सर्व कर्तृता नित्यता आदि कल्याणमय स्वभाव से परिपूर्ण होके इस रत्न निर्मित लिंग में व्याप्त होते हुए मेरे समीप उपस्थित होवें।

भगवन् ! पार्वतीनाथ ! भक्तानुग्रह कारक !
अस्मद्दयानुरोधेन सन्निधानं कुरु प्रभो।।

हे अमृतेश्वरी के स्वामी ! हे भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले अमृतेश्वर-भैरव ! हे प्रभु ! आप भक्तों पर सदा दया दिखाते हैं इस अनुरोध से मेरे सामने भी प्रकट होवें।

इत्याहूयतु गायत्रीं त्रिः समुच्चार्य तत्त्ववित्।
मनसा चिन्तितैर्द्रव्यैर्देवमात्मनि पूजयेत्।।

इस प्रकार अमृतेश्वर-भैरव को आवाहन करके, संवित् तत्त्व को जाननेवाला, तीन बार "भगवन् पार्वती नाथ !" इस श्लोक को पढ़कर मन से ही चिन्तन करने के बाद एकत्रित किये गये पूजा पदार्थों से उस पर-भैरव को अपने ही स्वरूप में पूजा करे।

ॐ जुं सः अमृतेश्वर भैरवाय नमः।।१०।।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।
आइ एम नॉट दिस बॉडी, दिस बॉडी इज़ नॉट माइन।
आइ एम नॉट दिस बॉडी, दिस बॉडी इज नॉट माइन।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।
आइ एम नॉट दिस माइण्ड, दिस माइण्ड इज़ नॉट माइन।
आइ एम नॉट दिस माइण्ड, दिस माइण्ड इज़ नॉट माइन।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।
आइ एम नॉट दिस ईगो, दिस ईगो इज़ नॉट माइन।
आइ एम नॉट दिस ईगो, दिस ईगो इज़ नॉट माइन।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।
ॐ नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं शिवोऽहं, सोऽहं शिवोऽहं सोऽहं शिवोऽहं।

अमृतेश्वर भैरवं स्वच्छन्दनाथं
श्रीकण्ठनाथं ऋषि दुर्वाससम्।
मानसपुत्रं त्र्यम्बकनाथं
आमर्दकनाथं श्रीनाथम्।।
मानस पुत्रीं अर्धत्र्यम्बकाख्यां
त्र्यम्बकादित्यं संगमादित्यं।
वर्षादित्यं अरुणादित्यं
आनन्दं सोमानन्दं
उत्पलदेवं आचार्यवरं श्री शम्भुनाथम्।
लक्ष्मणगुप्तमभिनवगुप्तं
क्षेमराजं योगराजं च।।
श्री गुरु मनकाकं, शैवाचार्यं रामं
तत् शिष्यं श्रीमहताब काकम्।
गुरु सन्ततिरूपे अवतारितं
शैव शम्भुं ईश्वरस्वरूपं च।।
भैरवं रुद्रं शिवतन्त्रं आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत् पादं शंकरं लोक शंकरम्।।
शंकरं शंकराचार्यं महान्तमभिनवगुप्तम्।
शैव शंकर अवतारितं ईश्वरस्वरूपं पुनः पुनः नमामि।।
ईश्वरस्वरूपं पुनः पुनः नमामि
ईश्वरस्वरूपं पुनः पुनः नमामि
सद्गुरु महाराज की जय जय जय
सद्गुरु महाराज की जय जय जय
सद्गुरु महाराज की जय जय जय
अमृतेश्वर-भैरव नाथ की जय जय जय।। ३।।

पिछले तीन युगों से चलनेवाली गुरुशिष्य परम्परा अपने प्रताप से केवल मौखिक रूप से ही सारे शास्त्रों को कण्ठस्थ रखती थी। कलियुग के आने पर महान गुरुओं में निराशा उत्पन्न हुई और वे दुर्गम्य स्थानों में छिपने लगे। इस तरह भैरव तन्त्रों और कश्मीर शैव-दर्शन-रहस्यों का भी लोप होने लगा। पर दयार्द्र पर-भैरव संसार के उत्थान के लिए कैलाश पर्वत पर स्वच्छन्द नाथ के रूप में नहीं अपितु श्रीकण्ठनाथ के रूप में प्रकट हुए। श्रीकण्ठनाथ के रूप में पर-भैरव ने जब ब्रह्मचारी उर्ध्वरिता (जिसने अपने तेज को सुरक्षित रखा हो) दुर्वासा ऋषि को भैरवतन्त्र समझाये तो उनसे यह कहा कि इन तन्त्रों का प्रचार, जात, वर्ण, धर्म आदि का ध्यान किये बिना, सारे संसार में होना चाहिये, यह कहकर वे अन्तर्ध्यान हुए। उसके पश्चात् दुर्वासा ऋषि ने घोर तपस्या के बाद भी किसी को अपना शिष्य बनाने के योग्य नहीं समझा। यह देखकर उन्होंने मानस पुत्र (मन से ही संकल्प करने से जिसकी उत्पत्ति हुई) को जन्मा, जिसका नाम ''त्र्यम्बकनाथ'' था। ''त्र्यम्बकनाथ'' ने भी दो मानसपुत्रों को उत्पन्न किया जिनका नाम ''आमर्दक नाथ'' और ''श्रीनाथ'' था। ''आमर्दकनाथ'' को पिता ने शिव तन्त्रों में और ''श्रीनाथ'' को रुद्र तन्त्रों में दीक्षित किया। नारी जगत् के उद्धार और उन्नति के लिए दुर्वासा ऋषि ने मानसपुत्री को भी जन्मा जिसका नाम ''अर्धत्र्यम्बका'' था। कश्मीर शैवदर्शन नारी को भी नर के साथ-साथ एक-सा स्थान देता है और प्रत्येक कर्म करने के लिए उसे पूरा अधिकार देता है। अतः दुर्वासा ऋषि ने इस पुत्री को पूरी तरह से भैरव तन्त्रों में दीक्षित करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। दुर्वासा ऋषि के सुपुत्र ''त्र्यम्बक नाथ'', जो अद्वय शैवदर्शन के संस्थापक माने जाते हैं, भी ब्रह्मचारी थे। उसने भी पिता की तरह एक मानसपुत्र को उत्पन्न किया जिसका नाम ''त्र्यम्बकादित्य'' पड़ा। इसे भैरव तन्त्रों में पूरी तरह से दीक्षित करके ''त्र्यम्बक नाथ'' एक गुफा में घुसकर वहीं अन्तर्हित हुए। ''त्र्यम्बकादित्य'' भी ब्रह्मचारी था। उन्होंने भी एक मानस पुत्र को जन्मा जिसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। इस प्रकार शैवदर्शन के पुनरुद्धार के लिए स्वच्छन्दनाथ ने पन्द्रह सिद्ध मानस पुत्रों के रूप में प्रकट किये। जब पन्द्रहवां सिद्ध भी मानस पुत्र की रचना करने बैठा तो वह सफल नहीं हुआ। कहते हैं कि यह पन्द्रहवां सिद्ध पूर्ण रूप से अन्तर्मुख नहीं था। वह सांसारिक सुखों की ओर भी आकर्षित हुआ। समाधि में उसे एक गुणवती सुन्दर कन्या का

साक्षात्कार हुआ। व्युत्थान में आकर उस कन्या के पिता के पास गया और उससे विवाह की अनुमति ली। विवाह के परिणाम स्वरूप उनको एक पुत्र हुआ जिसका नाम ''संगमादित्य'' था और वह अपनी इच्छा से कश्मीर की ओर आया। ''संगमादित्य'' ने भी एक सुन्दर कन्या से विवाह किया। उन्हें जिस पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई उसका नाम ''वर्षादित्य'' था। ''वर्षादित्य'' ने भी विवाह किया और उसे ''अरुणादित्य'' नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। ''अरुणादित्य'' पूरी तरह से शैव शास्त्रों में दीक्षित हुआ था। उसे भी विवाहोपरान्त एक पुत्र मिला जिसका नाम ''आनन्द'' था। ''आनन्द'' भी शैव दर्शनों में पारंगत हुआ था। इन्हीं का बेटा ''सोमानन्द'' था, जो शैवदर्शन की प्रत्यभिज्ञा शाखा का आविर्भावक माना जाता है और प्रसिद्ध शैव ग्रन्थ ''शिव दृष्टि'' का रचेता है। इस प्रकार ''सोमानन्द'' तक शैव शास्त्रों की दीक्षा पिता-पुत्र में चलती रही। इनके पश्चात् गुरु-शिष्य परम्परा का आरम्भ हुआ। ''श्री सोमानन्द'' ''आचार्य उत्पलदेव'' के गुरु थे। ''श्री उत्पल देव'' ''लक्ष्मण गुप्त'' के गुरु थे। ''श्री लक्ष्मण गुप्त'' शैव केसरी 'अभिनव गुप्त'' के गुरु थे। आचार्य अभिनव गुप्त के अनेक शिष्य थे पर उनके प्रधान शिष्य ''क्षेमराज'' थे। ''क्षेमराज'' के शिष्य ''योगराज'' थे। तत्पश्चात् कश्मीर घाटी में दैवी प्रकोप के कारण फिर से यह परम्परा रुक पड़ी। जब तक तत्त्वज्ञानी ''मन काक'' मोंगा अवतरित हुए। उन्हें बहुत से शिष्य थे पर सबसे प्रसिद्ध और प्रधान शिष्य स्वामी रामजी थे जो सदा समाधिनिष्ठ रहा करते थे। ये महान शैवाचार्य थे। सिद्ध योगी स्वामी रामजी के प्रधान शिष्य ''श्री महताब काक'' थे। ये भी अपने गुरु की तरह पूर्ण सिद्ध थे। सदा समाधि में लीन रहा करते थे। ''श्री महताब काक'' के भी बहुत से शिष्य थे। पर उन सबों में प्रधान शिष्य हमारे प्राणप्रिय आदरणीय सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप ईश्वराश्रम निशात, कश्मीर वासी ''श्री लक्ष्मणजी'' थे। इस प्रकार गुरु परम्परा के रूप में अवतरित हुए शैव योगी, शैव दर्शन के अपूर्व धुरन्धर विद्वान पर-भैरव स्वरूप अपने गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजी को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।।

जय गुरु देव।।

